The University of Osaka
Institutional Knowledge Archive

Title	कक्षा के पार
Author(s)	चैतन्य, प्रकाश योगी
Citation	印度民俗研究. 2017, 16, p. 101-112
Version Type	VoR
URL	https://hdl.handle.net/11094/60698
rights	
Note	

The University of Osaka Institutional Knowledge Archive : OUKA

https://ir.library.osaka-u.ac.jp/

The University of Osaka

कक्षा के पार

चैतन्य प्रकाश योगी

'नमस्कार !'

'आप कैसे हैं ?'

'मैं ठीक हूँ।'

यह छोटा सा संवाद यहाँ हिन्दी स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं में पढ़ने वाले लगभग सभी विद्यार्थियों के लिए आम है। अक्सर विश्वविद्यालय की बहुमंजिला इमारतों की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए अपनी कक्षा के समय से पूर्व निर्धारित कक्ष में पहुँच जाने की तत्परता में तेजी से बढ़ रहे विद्यार्थियों के साथ इन वाक्यों का आदान प्रदान होता है। शांत, संकोची, मितभाषी ये विद्यार्थी मुस्कराते हुए पूरी विनम्रता के साथ इस संवाद को सम्पन्न कर संतुष्टि अनुभव करते प्रतीत होते हैं।

ओसाका विश्वविद्यालय के तीन परिसर हैं, मिनोह, सुईता और तोयोनाका। पहाड़ की तलहटी में बसा अन्य दो परिसरों से छोटा किन्तु लगभग उनके जितना ही सुंदर मिनोह परिसर विश्व की पच्चीस से अधिक भाषाओं, उनके साहित्य और उनसे जुड़ी संस्कृतियों के अतिरिक्त इतिहास, अर्थव्यवस्था इत्यादि विषयों के अध्ययन का भी केंद्र हैं। विदेशी भाषा संकाय के स्नातक प्रथम वर्ष की सभी कक्षाएं तोयोनाका परिसर में होती हैं। जापान भर से राष्ट्रीय स्तर की कठिन प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण कर विद्यार्थी विभिन्न देशों की प्रमुख भाषाएँ पढ़ने के लिए यहाँ आते हैं। इसी तरह दुनियाँ के विभिन्न देशों से जापानी भाषा, साहित्य और संस्कृति पढ़ने के लिए अनेक विद्यार्थी कठिन परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर यहाँ प्रवेश प्राप्त करते हैं। सुईता परिसर में इंजीनियरिंग, मेडिकल, फार्मेसी आदि विषयों की तथा तोयोनाका परिसर में साहित्य, मानविकी और विज्ञान समेत अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती है।

विश्वविद्यालय में एक सहज वैश्विक परिवेश को जानते और जीते हुए अपने अध्ययन में रत रहने वाला यहाँ का विद्यार्थी स्वाभाविक रूप से विदेश यात्राएं कर विविध देशों के समाज जीवन के साथ प्रत्यक्ष संपर्क और संवाद भी करता है।

जापान में हिन्दी शिक्षण का इतिहास लगभग एक शताब्दी पुराना है। ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय (वर्तमान में ओसाका विश्वविद्यालय) के एमिरिटस प्रोफेसर कात्सुरो कोगा के अनुसार-

> "*आधुनिक जापान में भारतीय भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन का श्रीगणेश संस्कृत और पालि से हुआ। यूरोप में संस्कृत, पालि आदि प्राचीन भाषाओं के माध्यम से बौद्ध धर्म के अध्ययन का विकास होने के फलस्वरूप जापान में नए सिरे से, नए दृष्टिकोण से बौद्ध धर्म पर शोध कार्य आरंभ हो गया था। जापान में 19 वीं शती के प्रथम चरण से 20 वीं शती के प्रथम चरण में अनेक विद्वान ब्रिटेन, जर्मनी आदि*

पश्चिमी देशों में बौद्ध धर्म तथा इंडोलोजी के अध्ययनार्थ गए और जापान लौटकर अपना शोधकार्य बढ़ाते गए।"

(कात्सुरो कोगा, जापान में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन की स्थिति, पृष्ठ संख्या 51, 'हिन्दी शिक्षण अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य', केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, (1988), संपादक: सतीश कुमार रोहरा, सूरज भान सिंह)

प्रो॰कोगा आगे लिखते हैं-

जापानी लोग भारतवर्ष को मुख्यतः भगवान बुद्ध एवं बौद्ध धर्म के संबंध से सद्भावना एवं श्रद्धा की भावना से देखते आ रहे थे। एक मायने में यह स्थिति आज भी आंशिक रूप से सही, वर्तमान है। (जापान का एशिया के अन्य देशों विशेषकर चीन, कोरिया के साथ अच्छा संबंध नहीं रहा।) फिर भी जापान में आधुनिक भारत संबंधी अध्ययन और शोध कार्य को आरंभ होने में बहुत विलंब हुआ। इसका मुख्य कारण 19 वीं शती के उत्तरार्ध से लेकर 20 वीं शती के पूर्वार्ध तक जापान का आधुनिकीकरण के मार्ग में विचलित हो जाना था। उपनिवेशवादी पश्चिमी शक्तियों के दवाब और पश्चिमी सहायता की चकाचौंध व अंधानुकरण में जापानी लोग एशियाई लोगों और एशियाई संस्कृतियों की अवहेलना करने लगे थे। दूसरा कारण भारत का अँग्रेजी राज में आ जाना था जिससे भारत और जापान के बीच सीधा संबंध या संपर्क स्थापित होने में बाधा पड़ी।

जापान में आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्यापन का आरंभ 1908 में तो तोक्यो गाइकोकुगो गाक्को (तोक्यो विदेशी भाषा महाविद्यालय सरकारी) में हुआ था| उसी वर्ष से हिंदुस्तानी (आज की परिभाषा के अनुसार उर्दू) और तमिल दो भाषाएँ पढ़ाई जाने लगी। तीन वर्ष में कुल मिलाकर 19 छात्रों ने हिन्दुस्तानी पढ़ी और छह छात्रों ने तमिल पढ़ी। 1911 में तमिल भाषा का कोर्स बंद कर दिया गया। परंतु उसी वर्ष हिंदुस्तानी (उर्दू) का पाठ्यक्रम तीन वर्ष के पाठ्यक्रम में बदल दिया गया। हर दूसरे साल छात्रों को दाखिला मिलता था। यह क्रम 1919 तक जारी रहा। 1920 के पश्चात हर साल छात्र लिए जाने लगे। 1918 तक भारतीय अथवा गैर जापानी ही हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यापक के रूप में नियुक्त रहे। 1919 में श्री मिजुगुची हिन्दुस्तानी विभाग के प्रथम जापानी अध्यापक बने। फिर 1921 में ओसाका में ओसाका गाइकोकुगो गाक्को (ओसाका विदेशी भाषा महाविद्यालय की स्थापना हुई। यह भी शुरू में सरकारी विद्यालय रहा। 1922 से उसमें भी हिन्दुस्तानी (उर्दू) का त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम आरंभ हो गया। शुरू से ही ओसाका में प्रत्येक वर्ष छात्र प्रवेश पाते थे।

(कात्सुरो कोगा, जापान में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन की स्थिति, पृष्ठ संख्या 51, 52 'हिन्दी शिक्षण अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य', केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, (1988), संपादक: सतीश कुमार रोहरा, सूरज भान सिंह)

आज ओसाका विश्वविद्यालय में हर वर्ष 20 विद्यार्थी हिन्दी अध्ययन के लिए प्रवेश लेते हैं। अब हिन्दी स्नातक कोर्स चार वर्ष का है। इसके अतिरिक्त यहाँ दो वर्षीय हिन्दी स्नातकोत्तर अर्थात एम॰ए और पी॰एच डी तक के अध्ययन की सुविधा है। हिन्दी विभाग में पढ़ने वाले विद्यार्थी लगभग 80 से अधिक हैं। हिन्दी अध्यापन के लिए यहाँ तीन जापानी पूर्णकालिक प्राध्यापकों और एक मूल हिंदीभाषी अर्थात भारतीय पूर्णकालिक प्राध्यापक की व्यवस्था है। दो इसके अलावा दो या इससे अधिक जापानी प्राध्यापक अंशकालिक तौर पर अध्यापन करते हैं। हिन्दी व्याकरण एवं भाषा विज्ञान के अतिरिक्त यहाँ हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं – कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, व्यंग्य का अध्ययन – का अध्यापन होता है। अनुवाद, भारतीय संस्कृति इत्यादि विषयों के विशेष अध्ययन की भी यहाँ व्यवस्था है। इस विश्वविद्यालय के हिन्दी शिक्षण के इतिहास के संदर्भ में यहाँ के हिन्दी विभाग की प्राध्यापिका डॉ॰ हिरोको नागासाकी की यह संक्षिप्त टिप्पणी प्रो॰ कात्सुरो कोगा के इतिहास वर्णन को आगे बढ़ाती हैं:

> *"हमारे विश्वविद्यालय के पूर्व रूप ओसाका विदेशी भाषा विद्यालय की स्थापना 1921 ई॰ में हुई थी उस समय विद्यालय में 9 विदेशी भाषाओं के विभाग थे। हिन्दी उनमें से एक थी। उस विभाग का नाम 'भारतीय भाषा का विभाग' था। 1944 में यह विद्यालय ओसाका विदेशी भाषा अकादमी में परिवर्तित हुआ क्योंकि विश्वयुद्ध के कारण जापान सरकार विदेशी भाषाओं के शिक्षण को महत्त्व देने लगी थी और इस अकादमी के आधार पर 1949 में ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ फ़ॉरेन स्टडीज की स्थापना की गई थी।"*

(डॉ॰ हिरोको नागासाकी, 'ओसाका में हिन्दी शिक्षण की परंपरा', पृष्ठ संख्या 50, दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में हिन्दी शिक्षण, संपादक: डॉ॰ सुरेश ऋतुपर्ण, तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फ़ॉरेन स्टडीज़, तोक्यो, जापान (2008))

डॉ॰ नागासाकी आगे लिखती हैं:

> *"जापान में विदेशी भाषा शिक्षण के केवल दो ही सरकारी विश्वविद्यालय थे। वे थे तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फ़ॉरेन स्टडीज़ और ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ फ़ॉरेन स्टडीज़। 1966 में इस विभाग का नाम 'भारत और पाकिस्तान की भाषाओं का विभाग' हो गया, जिससे हिन्दी के साथ उर्दू का शिक्षण भी अलग से होने लगा था। 1969 में एम॰ ए॰ का शिक्षण और 1997 में पी॰एच॰डी का शिक्षण भी शुरू हुआ।"*

(डॉ॰ हिरोको नागासाकी, 'ओसाका में हिन्दी शिक्षण की परंपरा', पृष्ठ संख्या 50, दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में हिन्दी शिक्षण, संपादक: डॉ॰ सुरेश ऋतुपर्ण, तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फ़ॉरेन स्टडीज़, तोक्यो, जापान (2008))

ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ फ़ॉरेन स्टडीज़ का ओसाका विश्वविद्यालय में पूर्ण विलय होने के बाद अब जापान के इस बड़े विश्वविद्यालय में दुनिया की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं के साथ हिन्दी का भी अध्ययन अध्यापन हो रहा है। मूल जापानी भाषी शिक्षणार्थियों के हिन्दी सीखने की क्षमता के बारे में हिन्दी के प्रसिद्ध जापानी प्रोफेसर क्यूया दोई का मत इस प्रकार था-

"वाक्य विन्यास एक होने से हिन्दी भाषी लोग बहुत जल्दी जापानी सीख लेते हैं। परंतु भाषा सीखने के रूप में हिन्दी भाषी और जापानियों में कुछ अंतर है। हिन्दी भाषी बोलचाल की जापानी बहुत जल्दी सीख लेते है। तीन महीने में जापान में रहें तो उनकी भाषा बिलकुल जापानी जैसी होती है। लेकिन बोलचाल की भाषा में हमसे कुछ त्रुटि भी हो सकती है"।

(प्रो॰ क्यूया दोई, 'विश्व हिन्दी के भगीरथ', डॉ॰ भक्त राम शर्मा, पृष्ठ 194, 195 जगत राम एंड संस, दिल्ली (1993))

प्रो॰ दोई आगे लिखते हैं-

"जो हम अपने मस्तिष्क में सोचते हैं उसको सीधे हिन्दी में कह सकते हैं। इसलिए बोलना तो बहुत आसान होना चाहिए। मैं विद्यार्थियों से कहता हूँ कि दस-दस साल सीखी अँग्रेजी में बोलने से तीन महीने में सीखी हिन्दी में बोलना आसान है। हाँ, वाक्य विन्यास में एक कठिनाई यह होगी कि जब कभी संबंधवाचक विशेषण या क्रिया विशेषण आ जाए तो हिन्दी वाक्य और जापानी वाक्य का जो उपवाक्य है वो उलटा हो जाता है। क्योंकि जापानी में संबंधवाचक शब्द नहीं हैं। अब जापान में संबंधवाचक शब्द तो हैं लेकिन अँग्रेजी आदि यूरोपीय भाषाओं के अनुकरण पर बने हैं"।

('विश्व हिन्दी के भगीरथ', डॉ॰ भक्त राम शर्मा, पृष्ठ 195, जगत राम एंड संस, दिल्ली (1993))

अक्सर भारतीय लोगों के मन में एक प्रश्न उठता है, जापानी विद्यार्थी हिन्दी क्यों पढ़ते हैं ? सामान्यतया भारत में विश्वविद्यालयी विद्यार्थी रोजगार या जीविकोपार्जन को ध्यान में रखकर अपने अध्ययन का विषय चुनते हैं; परंतु जापानी विद्यार्थियों के हिन्दी पढ़ने के उद्देश्य में शायद यह आशय न्यूनतम होता होगा। ओसाका विदेशी भाषा

विश्वविद्यालय (वर्तमान में ओसाका विश्वविद्यालय) में अनेक वर्षों तक अध्यापन कर सेवानिवृत्त हुए प्राध्यापक और एमिरिटस प्रोफेसर तोमिओ मिज़ोकामि मानते हैं:

> *"भारतीय दर्शन सीखने, भारतीय इतिहास पढ़ने, योगासनों का अभ्यास करने, अथवा भारत भ्रमण की इच्छा से वे प्रवेश लेते हैं। हिन्दी में विशेष रुचि लेकर प्रवेश लेने वाले विद्यार्थी बहुत कम होते हैं। इससे संकेत मिलता है कि विद्यार्थियों की रुचि भाषा की अपेक्षा संस्कृति की ओर अधिक है।"* ('विश्व हिन्दी के भगीरथ', डॉ॰ भक्त राम शर्मा, पृष्ठ 202, जगत राम एंड संस, दिल्ली (1993))

हिन्दी पढ़ने वाले जापानी विद्यार्थियों की समस्याओं के संदर्भ में प्रो॰ मिज़ोकामि लिखते हैं:

> *"साधारणतः जापानी विद्यार्थी 18-19 वर्ष की आयु में हिन्दी सीखना शुरू करते हैं, तब तक वे विदेशी भाषा के रूप में केवल अँग्रेजी पढ़ते हैं। अतः नवीन भाषा के रूप में हिन्दी पर अधिकार प्राप्त करने के लिए उन्हें बहुत मेहनत (या कभी-कभी 'तपस्या') करनी पड़ती है। यद्यपि मूल वाक्य रचना की दृष्टि से और उच्चारण की दृष्टि से भी यह जापानियों के लिए कठिन नहीं है, बल्कि अधिक उपयुक्त होगा यह कहना कि अँग्रेजी की तुलना में बहुत आसान है।"*

('विश्व हिन्दी के भगीरथ', डॉ॰भक्त राम शर्मा, पृष्ठ 203, जगत राम एंड संस, दिल्ली (1993))

ओसाका विश्वविद्यालय के मूल हिन्दी भाषी प्राध्यापक के रूप पिछले लगभग पाँच वर्षों में अध्ययन, अध्यापन, अनुसंधान का दायित्व निर्वहन करते हुए इन पंक्तियों का लेखक अंतरसांस्कृतिक संवाद और संबंधशीलता के नित-नूतन अनुभवों से गुजरा है। इन अनुभवों की नवीनता एक अंतरतात्त्विक गहराई के स्तर पर इस लेखक को आत्मसंधान और आत्मजागरण के उदात्त पथ की ओर उन्मुख होते रहने में महती भूमिका अदा कर रही है। स्वभावतः अनुभवों के माध्यम से चित्त के प्रेक्षण को युगपत रूप से अधिक सूक्ष्म और विराट होते हुए अनुभूत करना एक नैसर्गिक सौभाग्य की भांति प्रतीत होता है। यह समझते हुए भी कि अनुभूति की भाषिक अभिव्यक्ति एक तुतलाहट या हकलाहट की तरह भाषा की सीमा और असमर्थता को ही प्रकट कर पाती है, अपनी लघुता, अकिंचनता और असमर्थता को स्वीकार करता यह शिक्षक इस विश्वविद्यालय के अपने इस साहचर्य के संदर्भ से मात्र कुछ अटपटे संकेत करने का प्रयास मात्र कर रहा है, ताकि इस लेख के पूर्वार्ध में वरिष्ठ शिक्षकों के कथनों से परिपूरित अनुभवांकन एक ताज़े और नए संदर्भ की सांगिकता और निरंतरता के साथ यथासंभव प्रामाणिकता और पूर्णता को पा सके।

अध्ययनशील समाज

दुनिया के समाजों पर सरसरी दृष्टि डालने पर यह कह सकने का पर्याप्त आधार मिल जाता है कि जापानी समाज 'पढ़ने वाला समाज' है। सरे-राह सार्वजनिक यातायात के साधनों से यात्रा करते हुए या किसी कतार में खड़े हुए सामान्य जनों को दत्तचित्त होकर पढ़ते देखना मानों असली जापान को देखने का का एक पर्याय है। 'अध्ययन की प्रवृत्ति' इस समाज की जिज्ञासा की तीव्रता को प्रतिबिम्बित करती है। शायद अध्ययन, अन्वेषण, अनुसंधान और आविष्कार के अनेकविध आयामों पर सारी दुनियाँ में अपनी उपस्थिति को प्रमुख और प्रासंगिक बनाए रखना इसी प्रवृत्ति के पोषण से संभव हो पाता हो।

स्वायत्त विश्वविद्यालय

जापान के ओसाका विश्वविद्यालय के अनुभव से यह जान पड़ता है कि विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में स्वायत्तता और स्वंत्रता का वातावरण सहज रूप से उपलब्ध है। पाठ्यक्रम, परीक्षा, पाठ्यपुस्तक की त्रयी किसी दुराग्रही या पारंपरिक तंत्रात्मक जकड़न से मुक्त है। यहाँ अध्ययन की सुविधा और सहजता के आधार पर हो सकने वाली प्रयोगशीलता के लिए पर्याप्त गुंजाइश है। जहाँ एक ओर विद्यार्थियों को अपने अध्ययन और अनुभव के लिए विदेशों में जाने और रहने के लिए प्रोत्साहित करने में तंत्र सहायक है, वहीं दूसरी ओर प्राध्यापकों के लिए भी अध्ययन, अनुसंधान की स्वाभाविक आवश्यकता के लिए देश-विदेश में प्रवास करने के साथ अन्य व्यवस्थागत सहयोग के द्वार भी सहज रूप से खुले हैं।

कर्मयोगी प्राध्यापक

सामान्यतया जापानी प्राध्यापक अध्ययन, अनुसंधान और अध्यापन के अपने कार्य में एकनिष्ठ तन्मयता के साथ जुटे रहते हैं। वे निरपवाद रूप से अपनी भूमिका का बेहतर तरीके से निर्वाह करने की चुनौती से हर पल जूझते हुए सदा व्यस्त रहते हैं। व्यक्तिगत व्यवहारों और निजताओं के तल एक दूसरे से काफी दूर और अलग से दिखने वाले ये शिक्षक सामूहिक या अंतर वैयक्तिक स्तरों पर बेहद संकोची और विनम्र होने के बावजूद स्पष्ट और दृढ़ निश्चयी है। अक्सर वे अपने अध्ययन के क्षेत्र में कोई पहाड़ उठाने जैसा कार्य करने की कोशिश करते दिखाई देते हैं। सहज ही वे अपने कर्म निष्ठा को संबंधशीलता से अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। पद, प्रतिष्ठा,प्रसिद्धि के लोभ में पड़े बिना 'स्वांत: सुखाय' अनथक परिश्रम करते रहना मानों इन प्राध्यापकों की सहज प्रकृति है। शायद इसीलिए इनके शोध कार्य 'बहुजन हिताय' हो जाते हैं।

बहुआयामी विद्यार्थी

यहाँ का विद्यार्थी बहुआयामी है। आजीविका या भविष्य की किसी स्पष्ट योजना या आकांक्षा के सीधे व निर्णायक समीकरणों से मुक्त होकर अपने देश, समाज और जीवन

व्यवहार से बहुत दूर की किसी भाषा को विधिवत रूप से अपने स्नातक अध्ययन के मुख्य विषय के रूप चुनना उनकी बहुआयामी प्रकृति का एक लक्षण है। इस तरह का अध्ययन स्वतः ही कठिन और चुनौतीपूर्ण हो जाता है। विश्वविद्यालय का भारी-भरकम शुल्क अदा करने और अपने अभिभावकों की न्यूनतम सहायता लेते हुए लगभग एक आत्मनिर्भर जीवन जीने के लिए सप्ताह में तीन या अधिक दिन, औसत चार घंटे (प्रतिदिन) के अंशकालिक कार्य से धनोपार्जन करने की आवश्यकता एक रोचक चुनौती की भांति जापानी विश्वविद्यालयी विद्यार्थियों के जीवन की वास्तविकता है। इस के अतिरिक्त ये विद्यार्थी अपने विश्वविद्यालय और दूसरे विश्वविद्यालयों में होने वाले अलग-अलग समारोहों, उत्सवों, स्पर्धाओं और मेलों मे अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार भाग लेने और वहाँ श्रेष्ठतम प्रदर्शन करने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं। ओसाका विश्वविद्यालय के 'भाषा-नाटक मेला' (गो-गेकि साई) में अपनी–अपनी अध्ययन की भाषाओं के नाटक प्रस्तुत करने की निष्ठा के लिए ये छात्र अपनी सामर्थ्य की सीमाओं का अतिक्रमण करने जैसा परिश्रम करते मालूम होते हैं। उदाहरणार्थ, वर्ष 2014 में मंचित हिन्दी नाटक हिन्दी स्नातक द्वितीय वर्ष के विद्यार्थियों का स्वरचित नाटक था। इसी वर्ष कोबे में आयोजित विश्व हिन्दी दिवस समारोह में कुछ विद्यार्थियों ने स्वरचित हिंदी कविताओं का पाठ किया था। इस वर्ष (2017) कोबे में इसी समारोह में कुछ विद्यार्थियों ने हिन्दी में अपने विचारों की भाषण के रूप में स्वाभाविक और समर्थ प्रस्तुति की थी।

जापानी विश्वविद्यालयी विद्यार्थी अनेक प्रकार की अभिरुचियों में बहुत तन्मयता से संलग्न रहते हैं। संगीत, नृत्य या किसी खेल में विश्वविद्यालय स्तर पर या विश्वविद्यालय के बाहर किसी क्लब के सदस्य के रूप में एक निश्चित स्तर के अभ्यास का हिस्सा बने रहने की लगन उनको निरंतर सक्रिय बनाए रखती है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्यार्थी समाज-सेवा जैसे कार्यो में भी संलग्न रहते हैं। जापानी विद्यार्थी अपने विश्वविद्यालयी जीवन को आनंद और अनुभव से भर लेने के लिए हरसंभव प्रयास करते प्रतीत होते हैं। इसलिए अपने अंशकालिक कार्य से धनोपार्जन कर छोटे-बड़े अवकाश के दौरान देश-विदेश का पर्यटन या भ्रमण करते रहते हैं।

साधारणतया जापानी विद्यार्थियों का स्वभाव संकोची होता है, अस्तु वे मितभाषी भी जान पड़ते हैं। उनमें आत्मगोपन की प्रवृत्ति भी बहुत बार दिखाई पड़ती है। परिश्रमशीलता, वचनबद्धता, अनुशासन, समय-पालन, प्रयोगधर्मिता, विनम्रता, निष्कपटता और मूलभूत सत्यनिष्ठा, संवेदनशीलता, सहयोगशीलता, वैश्विक समझ, तार्किकता, प्रश्नाकुलता, स्पष्टता और निर्णायकता आदि विभिन्न गुणों से लबरेज ये नौजवान विद्यार्थी कई बार अपने दृढ़ निश्चय से बूते पर कठिन कार्यों को सहजता से सम्पन्न कर लेते हैं। वे बहुधा एक परिपक्व और आत्मविश्वासी व्यक्ति की भांति निर्णय लेते

हैं। जुझारूपन की सामाजिक प्रवृत्ति को जीते हुए ये अपने कार्य और व्यवहार में निरंतर कुशलता अर्जित करते जाते हैं।

जापानी विद्यार्थियों में आपसी प्रतिस्पर्धा का भाव न्यूनतम दिखाई पड़ता है। इसलिए शायद वे आपसी निंदा, ईर्ष्या, द्वेष या कटुता के शिकार होने की राह पर कम ही जा पाते हैं।

आधुनिक तकनीकी और प्रोद्योगिकी के अग्रदूत के रूप में जीवन जीते हुए वे मनोरंजन के बहुत सारे अंतरराष्ट्रीय आयामों के निकट जान पड़ते हैं।

भेदभाव, दुराग्रहों एवं मताग्रहों के प्रति वे स्वाभाविक रूप से विरक्त दिखाई पड़ते हैं। शरीर से मजबूत और स्वस्थ बने रहने के लिए वे भोजन से लेकर व्यायाम तक के पथ्य, परहेज और गुण-दोष के प्रति बहुत सजग नज़र आते हैं।

कक्षा

विश्वविद्यालय की एक कक्षा डेढ़ घंटे की होती है। साधारणतया विद्यार्थी इन कक्षाओं में शांत और शिक्षक के प्रति विनम्र एवं सहयोगशील होते हैं। भाषा की कक्षा में विद्यार्थियों को संवाद के लिए प्रेरित और उत्साहित करना मूल भाषा-भाषी प्राध्यापकों के लिए एक आवश्यक दायित्व की भांति होता है। कक्षाओं में जापानी विद्याथियों की मुखरता कई बार दूर देशों से अपनी भाषा पढ़ाने आए प्राध्यापक को उपलब्धि की भांति प्रतीत होती है।

इस लेख का लेखक अपनी स्वाभाविक समर्पणशीलता में शिक्षक होने या अधिक जानने वाला होने के किसी से भाव मुक्त होकर कक्षा में विद्यार्थियों के साथ एक सहज सरोकार सम्पन्न संवेदनशील व्यवहार से उत्पन्न संवाद में लय होने का आनंद लेता रहा है। इस राह पर यह शिक्षक कक्षा में निर्धारित विषय की चर्चा को विद्यार्थियों के साथ आपसी समझ के तल पर जटिलता से सरलता की ओर बढ़ते हुए देखने का साक्षी हो पाया है।

शायद यह 'छोटे मुंह बड़ी बात' जैसा वक्तव्य ही है कि यह शिक्षक अपने विद्यार्थियों के साथ संवाद में कक्षा के भीतर से कक्षा के पार जाते हुए, भाषा के पार उठते हुए, विराट की ओर, अनंत की ओर, महामौन और शून्य की ओर इशारा करते करते अपने अस्तित्व को लीन होते, लय होते देखने के शब्दातीत आस्वादन को ही अपने जीवन का परम सौभाग्यशाली क्षण मानकर जीता आ रहा है।

क्या शिक्षा का उद्देश्य यह नहीं है कि वह भेदाभेद से पटी पड़ी इस पृथ्वी पर एकात्मता की परम लय का आस्वादन संक्रमित कर सके ?

भाषा की कक्षा देश विशेष के गौरव को महिमायित कर भाषा विशेष की प्रतिष्ठा को स्थापित करे, संस्कृति विशेष की श्रेष्ठता को जाने-अनजाने आरोपित करने का माध्यम बने और शिक्षक अपनी स्वभाषा का अध्यापन करते हुए बोलने-लिखने में अटकते-झिझकते हुए विदेशी विद्यार्थियों को देखकर, जाँचकर उनकी मेधा और प्रतिभा पर प्रश्नचिन्ह लगाए, फिर इस अपने प्रश्नचिन्ह लगाने के अधिकार को योग्यता मानकर अंतरराष्ट्रीय फ़लक पर विद्वान होने का दावा करने लगे, तो यह पंक्ति बरबस जेहन में उभरती है, "यह रीत इस नगर की है और न जाने कब से है" (पाकिस्तान से ओसाका विश्वविद्यालय में अध्यापन के लिए आए उर्दू के वरिष्ठ प्राध्यापक प्रो॰मरगूब ताहिर हुसैन की प्रसिद्ध गजल 'तितलियोंके मौसम में' का रदीफ़)।

वह भाषा जो अनपढ़, ग्राम्य जन की हृदय वीणा पर बज उठे अकुशल किन्तु मौलिक सुरों के शब्दों में ढलने से बनती और बढ़ती रही है, वह भाषा जो राजसत्ताओं, धर्मसत्ताओं, वंशो, विचारधाराओं और बौद्धिकों की छत्रछाया में रहकर इठलाने और इतराने वाली आभिजात्य भाषा कभी नहीं रही, बल्कि शब्द संस्कार से अनजान, भाषा के ज्ञान और सामर्थ्य से सर्वथा वंचित जन्मजात तुच्छ, हीन, क्षुद्र और मूढ़ कहलाने वालों के अटपटे-अनगढ़ वचनों को एक अनुपम थाती की तरह सँजोती आई है, वह भाषा जो परमात्मा के प्रेम में मदमत्त होकर नाचने वाले अनेक मतवालों की थिरकन की अनुगूँज बनकर संसार भर की लाड़ली भाषा बनी है, वह भाषा जो अन्याय, अत्याचार, शोषण और पाखंड के खिलाफ तन कर खड़े हो जाने वाले दुस्साहसी परवानों की ललकार को अपना मुख्य स्वर मानकर दुनिया को आत्मशक्ति के जागरण की प्रेरणा देती रही है, वह भाषा जो मनुष्य जाति के विगत पाँच हजार वर्षों के रक्तरंजित इतिहास की नस्लवादी, भेदवादी शब्दावली को प्रेम और आत्मीयता की अंतरध्वनि से बदल देने की स्वाभाविक सामर्थ्य से लबरेज है, उस भाषा का शिक्षक यदि डेढ़ घंटे की कक्षा को बोझिल किताबी सूचनाओं मात्र पर आधारित, रटे-रटाए, शुष्क और नीरस एकलाप से संचालित करे तो अपनी सक्रिय और व्यस्त दिनचर्या के कारण क्लांत हो जाने वाले जापानी विद्यार्थियों की छोटी-छोटी आँखों में यदा-कदा उतर आती तंद्रा को निद्रा में बदलने से भला कैसे रोका जा सकता है ? कक्षा के भीतर ही बनती अनेकों कक्षाओं में बंटती, बिखरती खंड-खंड चेतना को अखंड होने का निमंत्रण कैसे मिल पाएगा ? यों तो यह सारी शैक्षिक कवायद किसी आरोपित अनुशासन की भांति उबाऊ और सतही हो जाने के लिए अभिशप्त हो जाएगी, फिर कक्षा को कारा बनने से भला कौन रोक पाएगा ?

कक्षा सामूहिक चेतना की वह सरिता है, जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी अपने हिम तत्व (आग्रह, निद्रालस, अहं, निजता और कामना आदि) के साथ डुबकी लगाते हैं। लेकिन उनका हिम तत्व कुछ ही क्षणों में चेतना के प्रवाह मे लय होकर सरिता बन जाता है, यह सरिता सागर से मिलन की तीव्र अभीप्सा लिए वेगवान होकर बढ़ती है, कुछ अवसर आते

है जब यह सरित प्रवाह अनंत महासागर के पारावार को चीन्हने में समर्थ हो पाता है, यह चेतना का परम मिलन, यह परम लयात्मकता, यह परम लीनता ही कक्षा का चरमोत्कर्ष है और शायद शिक्षा का भी यह चरमोत्कर्ष है, इसी महाबिन्दु पर ज्ञान और सृजन प्रकट होता है, शिक्षक के भीतर से शिक्षक के पार, विद्यार्थी के भीतर से विद्यार्थी के पार, भाषा के भीतर से भाषा के पार, कक्षा के भीतर से कक्षा के पार।

जापान के ओसाका प्रांत के मिनोह शहर के ओनोहारा नामक स्थान पर स्थित अपने निवास की खिड़की से यह शिक्षक पहाड़ की तलहटी पर बसे परिसर की ओर अक्सर भर आँख देखता है, हरे-भरे वृक्षों से लदे पहाड़ की हरियाली से एक संवाद की अनुगूँज सुनाई पड़ती है,

नमस्कार !

आप कैसे है ?

मैं ठीक हूँ, धन्यवाद।

अपने देश की धरती से हजारों मील दूर एकांत जीवन जीते इस अकिंचन शिक्षक को हिन्दी ऊपर उठते हुए दिख रही है, कक्षा के पार, सभी भेदो और सीमाओं के पार..... ।